Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
January to March 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIII (53), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

भारतीय ज्ञान परम्परा में जैविक खेती : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं समकालीन प्रासंगिकता

डॉ. मधुसूदन चौबे*

* एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास) प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, शहीद भीमा नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बडवानी (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – भारतीय सभ्यता का विकास प्रकृति के साथ संतुलित सह-अस्तित्व की भावना पर आधारित रहा है। भारतीय ज्ञान परम्परा में कृषि को केवल आजीविका या उत्पादन का साधन नहीं माना गया, बल्कि उसे धर्म, संस्कृति, पर्यावरण, अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक जीवन का आधार स्वीकार किया गया है। वैदिक साहित्य, कृषि पाराशर, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, वृक्षायुर्वेद, बृहत्संहिता तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में कृषि संबंधी ऐसे अनेक सिद्धांत वर्णित हैं, जिनमें भूमि की उर्वरता, जल संरक्षण, बीज चयन, गो-आधारित कृषि, प्राकृतिक खाद, फसल विविधता तथा जैव विविधता के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। इन सिद्धांतों का मूल उद्देश्य प्रकृति के साथ संतुलन बनाए रखते हुए कृषि उत्पादन को स्थायी एवं समृद्ध बनाना था।

वर्तमान समय में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से मृदा की उर्वरता में कमी, जल प्रदूषण, जैव विविधता का ह्रास तथा मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव जैसी समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। ऐसी परिस्थितियों में जैविक खेती एक प्रभावी विकल्प के रूप में उभरकर सामने आई है। यद्यपि आधुनिक अर्थों में जैविक खेती का औपचारिक विकास बीसवीं शताब्दी में हुआ, तथापि इसके अनेक मूलभूत सिद्धांत भारतीय कृषि परम्परा में प्राचीन काल से विद्यमान रहे हैं। इसलिए भारतीय ज्ञान परम्परा का ऐतिहासिक पुनर्पाठ आज की सतत कृषि व्यवस्था के लिए अत्यंत प्रासंगिक है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य भारतीय ज्ञान परम्परा में वर्णित कृषि संबंधी सिद्धांतों का ऐतिहासिक विश्लेषण करना तथा उनका आधुनिक जैविक खेती की अवधारणाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन करना है। यह अध्ययन गुणात्मक एवं ऐतिहासिक शोध पद्धति पर आधारित है, जिसमें वैदिक साहित्य, प्राचीन संस्कृत ग्रंथों, भारतीय कृषि संबंधी पारंपरिक स्रोतों तथा आधुनिक शोध साहित्य का सम्यक् विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रतिपादित कृषि सिद्धांत वर्तमान समय की जैविक खेती, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण तथा सतत कृषि विकास की अवधारणाओं के साथ उल्लेखनीय साम्य रखते हैं। यदि इन सिद्धांतों का वैज्ञानिक परीक्षण एवं समकालीन आवश्यकताओं के अनुरूप पुनर्प्रयोग किया जाए, तो कृषि, पर्यावरण संरक्षण तथा खाद्य सुरक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त किया जा सकता है।

शब्द कुंजी – भारतीय ज्ञान परम्परा, जैविक खेती, सतत कृषि, कृषि पाराशर, वृक्षायुर्वेद, पारम्परिक कृषि ज्ञान, पर्यावरण संरक्षण, मृदा स्वास्थ्य।

प्रस्तावना – भारत को प्राचीन काल से कृषि प्रधान देश के रूप में जाना जाता है। यहाँ की सभ्यता, संस्कृति, अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक संरचना का विकास कृषि के आधार पर हुआ। भारतीय मनीषियों ने कृषि को केवल अन्न उत्पादन का माध्यम नहीं माना, बल्कि मानव, प्रकृति तथा समस्त जीव-जगत के मध्य संतुलन स्थापित करने वाली जीवन-पद्धति के रूप में विकसित किया। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान परम्परा में पृथ्वी को माता, जल को जीवन का आधार, वृक्षों को प्राणवायु का स्रोत तथा गौ को कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार माना गया है।

वैदिक साहित्य में कृषि को सम्मानजनक एवं लोककल्याणकारी कार्य माना गया है। ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा यजुर्वेद में भूमि की उर्वरता, वर्षा, अन्न उत्पादन, बीज, कृषि कर्म तथा पशुपालन से संबंधित अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। उत्तरवैदिक काल में कृषि पाराशर, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, वृक्षायुर्वेद तथा बृहत्संहिता जैसे ग्रंथों ने कृषि विज्ञान को अधिक व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया। इन ग्रंथों में भूमि परीक्षण, बीज चयन, सिंचाई व्यवस्था, फसल संरक्षण, प्राकृतिक खाद, पौध संरक्षण, वृक्षारोपण तथा कृषि प्रबंधन के व्यावहारिक उपायों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

भारतीय कृषि परम्परा का मूल आधार प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करना था। कृषि में पशुधन को अभिन्न अंग माना गया। गोबर एवं गोमूत्र का उपयोग भूमि की उर्वरता बनाए रखने, ईंधन, खाद तथा अन्य कृषि कार्यों में किया जाता था। फसल चक्र, मिश्रित खेती, वर्षा जल का संरक्षण, स्थानीय बीजों का उपयोग तथा जैव विविधता का संरक्षण भारतीय कृषि व्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषताएँ थीं। इन सिद्धांतों ने लंबे समय तक कृषि उत्पादन और प्राकृतिक संसाधनों के बीच संतुलन बनाए रखा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में हरित क्रांति के माध्यम से खाद्यान्न उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, किंतु रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों तथा एकल फसल प्रणाली के अत्यधिक उपयोग से मृदा की गुणवत्ता, जल संसाधनों, पर्यावरण तथा जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव भी सामने आए। इन परिस्थितियों ने ऐसी कृषि प्रणाली की आवश्यकता को रेखांकित किया जो उत्पादन क्षमता बनाए रखते हुए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण कर सके। इसी संदर्भ में जैविक खेती का महत्व निरंतर बढ़ा है।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि वर्तमान स्वरूप में जैविक खेती एक आधुनिक कृषि प्रणाली है, जिसका व्यवस्थित विकास बीसवीं शताब्दी में हुआ। अत: यह कहना ऐतिहासिक रूप से उचित नहीं होगा कि आज की संपूर्ण जैविक खेती प्राचीन भारत में उसी रूप में विद्यमान थी। तथापि भारतीय ज्ञान परम्परा में वर्णित अनेक कृषि सिद्धांत जैसे प्राकृतिक खादों का उपयोग, भूमि की उर्वरता का संरक्षण, गो-आधारित कृषि, फसल विविधता, जल संरक्षण तथा पर्यावरण के प्रति संवेदनशील कृषि पद्धतिकृआधुनिक जैविक खेती के मूल सिद्धांतों के साथ पर्याप्त साम्य रखते हैं। यही ऐतिहासिक निरंतरता इस अध्ययन का प्रमुख आधार है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में भारतीय ज्ञान प्रणाली के अध्ययन, संरक्षण एवं समकालीन उपयोग पर विशेष बल दिया गया है। इसी प्रकार भारत सरकार द्वारा प्राकृतिक खेती, जैविक खेती, मृदा स्वास्थ्य संरक्षण तथा सतत कृषि विकास को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न योजनाएँ संचालित की जा रही हैं। इन पहलों ने भारतीय कृषि परम्परा के पुनर्मूल्यांकन को नई दिशा प्रदान की है।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में जलवायु परिवर्तन, मृदा क्षरण, जल संकट, रासायनिक प्रदूषण तथा खाद्य सुरक्षा जैसी चुनौतियों के समाधान के लिए सतत कृषि पद्धतियों की आवश्यकता पहले से अधिक अनुभव की जा रही है। ऐसी स्थिति में भारतीय ज्ञान परम्परा में निहित कृषि संबंधी सिद्धांत केवल ऐतिहासिक महत्व के नहीं हैं, बल्कि वे वर्तमान एवं भविष्य की कृषि व्यवस्था के लिए भी उपयोगी मार्गदर्शन प्रदान कर सकते हैं। इस दृष्टि से भारतीय ज्ञान परम्परा और जैविक खेती के पारस्परिक संबंधों का ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक है।

शोध समस्या- हरित क्रांति के पश्चात कृषि उत्पादन में वृद्धि अवश्य हुई, किन्तु रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों तथा अन्य बाह्य कृषि आदानों पर बढ़ती निर्भरता के कारण मृदा की उर्वरता, जल संसाधनों, जैव विविधता तथा पर्यावरणीय संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। दूसरी ओर भारतीय ज्ञान परम्परा में वर्णित कृषि सिद्धांत प्रकृति-सम्मत, संसाधन-संरक्षण आधारित तथा दीर्घकालिक कृषि व्यवस्था का संकेत देते हैं। इसके बावजूद प्राचीन भारतीय कृषि ज्ञान और आधुनिक जैविक खेती के मध्य संबंधों का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित स्तर पर नहीं हुआ है। प्रस्तुत शोध इसी शोध-अंतर की पूर्ति का प्रयास करता है।

शोध के उद्देश्य:

1. भारतीय ज्ञान परम्परा में कृषि संबंधी अवधारणाओं का ऐतिहासिक अध्ययन करना।
2. वैदिक एवं उत्तरवैदिक साहित्य में वर्णित कृषि संबंधी सिद्धांतों का विश्लेषण करना।
3. कृषि पाराशर, वृक्षायुर्वेद तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित कृषि पद्धतियों का अध्ययन करना।
4. भारतीय पारम्परिक कृषि ज्ञान एवं आधुनिक जैविक खेती के सिद्धांतों का तुलनात्मक विश्लेषण करना।
5. सतत कृषि विकास एवं पर्यावरण संरक्षण में भारतीय ज्ञान परम्परा की प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना।
6. समकालीन कृषि नीति एवं ग्रामीण विकास में भारतीय कृषि ज्ञान की उपयोगिता का अध्ययन करना।

शोध प्रश्न:

1. भारतीय ज्ञान परम्परा में कृषि का स्वरूप एवं उद्देश्य क्या था?
2. प्राचीन भारतीय ग्रंथों में जैविक एवं प्राकृतिक कृषि से संबंधित कौन-कौन से सिद्धांत वर्णित हैं?
3. भारतीय कृषि परम्परा एवं आधुनिक जैविक खेती में कौन-कौन सी प्रमुख समानताएँ एवं भिन्नताएँ हैं?
4. सतत कृषि विकास में भारतीय ज्ञान परम्परा की क्या भूमिका हो सकती है?
5. आधुनिक कृषि व्यवस्था में भारतीय पारम्परिक कृषि ज्ञान का प्रभावी उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है?

शोध पद्धति - प्रस्तुत शोध गुणात्मक, ऐतिहासिक, वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया जाएगा। प्राथमिक स्रोतों में ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद, कृषि पाराशर, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, वृक्षायुर्वेद, बृहत्संहिता तथा अन्य प्राचीन संस्कृत ग्रंथों का अध्ययन किया जाएगा। द्वितीयक स्रोतों में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, राष्ट्रीय जैविक कृषि केन्द्र, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारतीय ज्ञान प्रणाली से संबंधित प्रकाशनों, शोध-पत्रों तथा संदर्भ ग्रंथों का उपयोग किया गया।

भारतीय ज्ञान परम्परा की अवधारणा- भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की प्राचीनतम एवं समृद्ध ज्ञान परम्पराओं में से एक है। इसका विकास हजारों वर्षों के अनुभव, अवलोकन, प्रयोग तथा चिंतन के आधार पर हुआ। यह परम्परा केवल आध्यात्मिक या दार्शनिक विचारों तक सीमित नहीं रही, बल्कि शिक्षा, चिकित्सा, गणित, खगोलशास्त्र, धातुकर्म, जल प्रबंधन, वास्तुकला, कृषि तथा पर्यावरण संरक्षण जैसे अनेक क्षेत्रों में व्यावहारिक ज्ञान का भी विकास करती रही।

भारतीय ज्ञान परम्परा का मूल आधार प्रकृति और मानव के मध्य संतुलित संबंध की स्थापना है। यहाँ प्रकृति को केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवन का आधार माना गया है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश को पंचमहाभूतों के रूप में स्वीकार करते हुए उनके संरक्षण को मानव जीवन की अनिवार्य शर्त माना गया। इसी कारण भारतीय संस्कृति में नदियों, पर्वतों, वृक्षों तथा पशुओं के प्रति सम्मान का भाव विकसित हुआ।

भारतीय ज्ञान परम्परा का उद्देश्य केवल आर्थिक समृद्धि प्राप्त करना नहीं था, बल्कि मानव, समाज तथा प्रकृति के बीच संतुलन स्थापित करना था। यही कारण है कि कृषि, पशुपालन, जल संरक्षण, वन संरक्षण तथा प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग को धर्म, कर्तव्य एवं लोककल्याण से जोड़ा गया।

कृषि के संदर्भ में भारतीय ज्ञान परम्परा की विशेषता यह है कि इसमें भूमि को केवल उत्पादन का माध्यम नहीं, बल्कि जीवंत इकाई माना गया। भूमि की उर्वरता, वर्षा, बीज, जल, पशुधन तथा कृषि कर्म को परस्पर संबद्ध माना गया। यह दृष्टिकोण आज की सतत कृषि की मूल अवधारणाओं से साम्य रखता है।

प्राचीन भारत में कृषि का ऐतिहासिक विकास- भारतीय उपमहाद्वीप में कृषि का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। पुरातात्त्विक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि नवपाषाण काल से ही कृषि का प्रारम्भ हो चुका था। सिंधु-सरस्वती सभ्यता के समय तक कृषि एक विकसित आर्थिक गतिविधि बन चुकी थी। गेहूँ, जौ, तिल, कपास तथा विभिन्न दलहनी फसलों की खेती के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

सिंचाई, अन्न भंडारण तथा कृषि उपकरणों के उपयोग से स्पष्ट होता है कि उस समय कृषि सुव्यवस्थित अवस्था में थी।

वैदिक काल में कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार बन गई। ऋग्वेद में हल चलाने, वर्षा की कामना, अन्न उत्पादन तथा पशुपालन से संबंधित अनेक मंत्र मिलते हैं। कृषि और पशुपालन को परस्पर पूरक माना गया। बैलों द्वारा हल चलाना, गोबर का उपयोग तथा पशुधन की सुरक्षा कृषि व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग थे।

उत्तरवैदिक काल में कृषि तकनीकों का और अधिक विकास हुआ। लोहे के कृषि उपकरणों के प्रयोग से उत्पादन क्षमता बढ़ी। भूमि की प्रकृति के अनुसार खेती, सिंचाई व्यवस्था तथा फसल विविधता पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। महाजनपद एवं मौर्य काल तक कृषि राज्य की आर्थिक व्यवस्था का आधार बन चुकी थी। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कृषि प्रशासन, सिंचाई, कर व्यवस्था तथा कृषि सुरक्षा के विस्तृत निर्देश दिए हैं।

गुप्त काल एवं उसके पश्चात भी कृषि का निरंतर विकास होता रहा। इस काल में कृषि संबंधी अनेक स्वतंत्र ग्रंथों की रचना हुई, जिनमें कृषि पाराशर तथा वृक्षायुर्वेद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन ग्रंथों में कृषि को अनुभवजन्य विज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

वैदिक साहित्य में कृषि का स्वरूप– वैदिक साहित्य भारतीय कृषि परम्परा का प्राचीनतम साहित्यिक आधार है। ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा यजुर्वेद में कृषि, वर्षा, अन्न, पशुपालन तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है।

ऋग्वेद में कृषक के परिश्रम, उर्वर भूमि तथा उत्ताम फसल की कामना व्यक्त की गई है। कृषि को समाज के जीवन एवं समृद्धि का आधार माना गया है। वर्षा को कृषि की आत्मा माना गया तथा समय पर वर्षा के लिए प्रार्थनाएँ की गईं। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय समाज प्राकृतिक चक्रों के महत्व से भली–भाँति परिचित था।

अथर्ववेद में पृथ्वी को माता कहकर संबोधित किया गया है तथा उसकी उर्वरता बनाए रखने की कामना की गई है। पृथ्वी सूक्त में भूमि के प्रति श्रद्धा, संरक्षण तथा संतुलित उपयोग की भावना स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है। यह दृष्टिकोण आज के पर्यावरण संरक्षण एवं मृदा संरक्षण की अवधारणाओं के अत्यंत निकट है।

यजुर्वेद में यज्ञ, वर्षा तथा कृषि के मध्य संबंध का उल्लेख मिलता है। यहाँ यज्ञ का व्यापक अर्थ प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व, सामूहिक अनुशासन तथा पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने के प्रयासों के रूप में भी समझा गया है। आधुनिक शोधकर्ता इन उल्लेखों का अध्ययन सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक संदर्भ में करते हैं।

वैदिक साहित्य में कृषि और पशुपालन को एक–दूसरे का पूरक माना गया है। गौ को केवल धार्मिक प्रतीक नहीं, बल्कि कृषि अर्थव्यवस्था का आधार माना गया। गोबर का उपयोग भूमि की उर्वरता बनाए रखने तथा ग्रामीण जीवन की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति में किया जाता था।

कृषि पाराशर : भारतीय कृषि विज्ञान का महत्वपूर्ण ग्रंथ– प्राचीन भारतीय कृषि साहित्य मेंकृषि पाराशरका विशेष स्थान है। यह ग्रंथ कृषि विज्ञान पर उपलब्ध सबसे महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रंथों में माना जाता है। इसमें कृषि को केवल अनुभवजन्य कार्य नहीं, बल्कि सुव्यवस्थित वैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

कृषि पाराशर में भूमि की तैयारी, बीज चयन, बुवाई का समय, वर्षा का पूर्वानुमान, कृषि उपकरणों का उपयोग, सिंचाई व्यवस्था तथा फसल प्रबंधन का विस्तृत वर्णन मिलता है। ग्रंथ में ऋतुओं के अनुसार कृषि कार्यों का निर्धारण किया गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय कृषक जलवायु एवं मौसम के प्रभावों का गहन अध्ययन करते थे।

इस ग्रंथ में पशुधन को कृषि का आधार माना गया है। बैलों द्वारा हल चलाना, गोबर का उपयोग तथा खेत की उर्वरता बनाए रखने के उपायों का उल्लेख मिलता है। भूमि की क्षमता के अनुसार फसल चयन तथा समयानुकूल कृषि कार्यों पर विशेष बल दिया गया है।

कृषि पाराशर का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि इसमें कृषि को प्रकृति के साथ संतुलन बनाए रखते हुए करने की प्रेरणा दी गई है। भूमि के अत्यधिक दोहन के स्थान पर उसके संरक्षण तथा दीर्घकालिक उत्पादकता पर बल दिया गया है। यही दृष्टिकोण आधुनिक सतत कृषि के मूल सिद्धांतों से साम्य रखता है।

वृक्षायुर्वेद : पर्यावरण एवं कृषि का समन्वित दृष्टिकोण– भारतीय ज्ञान परम्परा में वृक्षों को जीवन का आधार माना गया है। इस परम्परा का व्यवस्थित स्वरूपवृक्षायुर्वेदमें मिलता है, जिसके रचयिता सुरपाल माने जाते हैं। यह ग्रंथ वृक्षों के रोपण, संरक्षण, पोषण तथा रोगों के उपचार का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है।

वृक्षायुर्वेद में विभिन्न प्रकार की मिट्टियों का वर्गीकरण, पौधों के अनुकूल भूमि का चयन, पौधरोपण की विधियाँ, प्राकृतिक खादों का उपयोग तथा पौधों के रोगों की पहचान एवं उपचार का उल्लेख मिलता है। यह ग्रंथ दर्शाता है कि प्राचीन भारत में वृक्षों एवं कृषि के संबंध में व्यवस्थित अनुभवजन्य ज्ञान उपलब्ध था।

ग्रंथ में गोबर, पत्तियों, वनस्पति अवशेषों तथा अन्य प्राकृतिक पदार्थों से तैयार पोषक मिश्रणों का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि भूमि की उर्वरता बनाए रखने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किया जाता था।

वृक्षायुर्वेद केवल उद्यान विज्ञान का ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह पर्यावरण संरक्षण, जैव विविधता तथा कृषि के समन्वित विकास की अवधारणा प्रस्तुत करता है। आधुनिक कृषि विज्ञान में जिस प्रकार कृषि–वनीकरण, वृक्षारोपण तथा पारिस्थितिक संतुलन पर बल दिया जा रहा है, उसके ऐतिहासिक आधार भारतीय ज्ञान परम्परा में स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र और कृषि प्रशासन– कौटिल्य काअर्थशास्त्रकेवल राजनीति एवं अर्थव्यवस्था का ग्रंथ नहीं है, बल्कि इसमें कृषि प्रशासन, सिंचाई व्यवस्था, भूमि प्रबंधन तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था का भी विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है।

कौटिल्य ने कृषि को राज्य की आर्थिक समृद्धि का प्रमुख आधार माना है। उन्होंने कृषि योग्य भूमि के संरक्षण, सिंचाई व्यवस्था के विकास, नहरों एवं जलाशयों के निर्माण तथा किसानों को आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध कराने पर बल दिया। अर्थशास्त्र में कृषि अधिकारियों की नियुक्ति, कृषि उत्पादन की निगरानी तथा प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित किसानों को सहायता प्रदान करने का भी उल्लेख मिलता है।

भूमि की उत्पादकता बनाए रखने तथा सिंचाई के समुचित प्रबंधन पर दिया गया कौटिल्य का बल आज भी कृषि नीति के संदर्भ में प्रासंगिक है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में कृषि केवल व्यक्तिगत व्यवसाय नहीं थी, बल्कि राज्य की आर्थिक नीति का प्रमुख आधार भी थी।

भारतीय ज्ञान परम्परा में जैविक खेती के मूल सिद्धांत– भारतीय ज्ञान परम्परा में कृषि का उद्देश्य केवल अधिक उत्पादन प्राप्त करना नहीं था, बल्कि भूमि, जल, वनस्पति, पशुधन तथा मानव के मध्य संतुलन बनाए रखना भी था। प्राचीन भारतीय कृषक प्रकृति को कृषि का सहचर मानते थे, इसलिए कृषि कार्य ऋतु, जलवायु, मिट्टी तथा स्थानीय संसाधनों के अनुरूप किए जाते थे। यही कारण है कि भारतीय कृषि परम्परा में अनेक ऐसे सिद्धांत विकसित हुए जो वर्तमान जैविक खेती के मूल आधारों के साथ पर्याप्त साम्य रखते हैं।

भारतीय कृषि व्यवस्था का प्रथम सिद्धांतमृदा की उर्वरता का संरक्षणथा। भूमि को निरंतर उत्पादक बनाए रखने के लिए प्राकृतिक खादों, पशु अपशिष्ट, वनस्पति अवशेषों तथा जैविक पदार्थों का उपयोग किया जाता था। कृषि पाराशर तथा वृक्षायुर्वेद में भूमि की प्रकृति के अनुसार कृषि करने तथा उसकी उर्वरता बनाए रखने पर विशेष बल दिया गया है।

दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोगथा। जल का संरक्षण, वर्षा पर आधारित कृषि, तालाबों एवं जलाशयों का निर्माण तथा सिंचाई के संतुलित उपयोग को कृषि की सफलता का आधार माना गया।

तीसरा सिद्धांतजैव विविधता का संरक्षण था। एक ही प्रकार की फसल पर निर्भर रहने के स्थान पर विभिन्न प्रकार की फसलों, वृक्षों तथा पशुधन के समन्वित विकास को प्रोत्साहित किया जाता था। इससे भूमि की उर्वरता बनी रहती थी तथा प्राकृतिक आपदाओं की स्थिति में जोखिम भी कम होता था।

इन सिद्धांतों से स्पष्ट होता है कि भारतीय कृषि परम्परा का मूल आधार प्रकृति के साथ संतुलन स्थापित करना था। यही दृष्टिकोण आज की सतत कृषि एवं जैविक खेती की आधारशिला भी है।

गो-आधारित कृषि एवं प्राकृतिक पोषण व्यवस्था– भारतीय कृषि व्यवस्था में गौ को केवल धार्मिक या सांस्कृतिक दृष्टि से नहीं, बल्कि कृषि अर्थव्यवस्था के आधार के रूप में स्वीकार किया गया। बैलों का उपयोग जुताई, परिवहन तथा सिंचाई संबंधी कार्यों में किया जाता था, जबकि गोबर एवं गोमूत्र का उपयोग भूमि की उर्वरता बनाए रखने तथा विभिन्न कृषि कार्यों में होता था।

गोबर से तैयार खाद भूमि में जैविक पदार्थों की मात्रा बढ़ाती थी तथा मिट्टी की संरचना को बेहतर बनाती थी। इससे भूमि की जल धारण क्षमता एवं सूक्ष्मजीवों की सक्रियता में वृद्धि होती थी। भारतीय ग्रामीण समाज में खेतों में गोबर, सूखी पत्तियों तथा अन्य जैविक अवशेषों को मिलाकर खाद तैयार करने की परम्परा लंबे समय तक प्रचलित रही।

यह उल्लेखनीय है कि आधुनिक समय में प्रयुक्त अनेक कृषि तकनीकों, जैसे जीवामृत अथवा बीजामृत, का विकास समकालीन कृषि नवाचारों के अंतर्गत हुआ है। इन्हें सीधे प्राचीन ग्रंथों से जोड़ना ऐतिहासिक रूप से उचित नहीं होगा। तथापि इनका आधार स्थानीय संसाधनों तथा जैविक पदार्थों के उपयोग की उसी व्यापक परम्परा से जुड़ा है, जिसका उल्लेख भारतीय कृषि साहित्य में मिलता है।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान परम्परा में गो-आधारित कृषि का उद्देश्य केवल उत्पादन बढ़ाना नहीं, बल्कि मृदा स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण तथा कृषि की आत्मनिर्भरता को बनाए रखना था।

मृदा संरक्षण एवं प्राकृतिक उर्वरता– भूमि को भारतीय परम्परा में जीवनदायिनी माना गया है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी के प्रति सम्मान, संरक्षण तथा संतुलित उपयोग की भावना व्यक्त की गई है। यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि प्राचीन भारतीय समाज भूमि को केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवन का आधार मानता था।

कृषि पाराशर तथा वृक्षायुर्वेद में भूमि के प्रकार, उसकी गुणवत्ता तथा उसके अनुरूप फसल चयन का उल्लेख मिलता है। कृषि से पूर्व भूमि की तैयारी, समयानुकूल जुताई तथा प्राकृतिक पदार्थों के माध्यम से उसकी उर्वरता बनाए रखने पर बल दिया गया है।

भारतीय कृषकों द्वारा खेतों में गोबर, पत्तियाँ, कृषि अवशेष तथा अन्य प्राकृतिक पदार्थ मिलाकर भूमि की उत्पादकता बनाए रखने की परम्परा रही है। खेत को समय-समय पर विश्राम देना, फसल परिवर्तन करना तथा भूमि की क्षमता के अनुरूप खेती करना भी मृदा संरक्षण की महत्वपूर्ण विधियाँ थीं।

आज आधुनिक कृषि विज्ञान भी मृदा स्वास्थ्य को कृषि उत्पादन की आधारशिला मानता है। इस दृष्टि से भारतीय ज्ञान परम्परा की मृदा संरक्षण संबंधी अवधारणाएँ वर्तमान कृषि विज्ञान के साथ उल्लेखनीय साम्य रखती हैं।

फसल विविधता, फसल चक्र एवं मिश्रित खेती– भारतीय कृषि व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता फसल विविधता थी। विभिन्न प्रकार की खाद्यान्न, दलहनी, तिलहनी, फल एवं सब्जी फसलों की खेती स्थानीय जलवायु तथा मिट्टी के अनुसार की जाती थी। इससे एक ओर किसानों की खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी, वहीं दूसरी ओर भूमि की उर्वरता एवं जैव विविधता भी बनी रहती थी।

फसल चक्र का उद्देश्य एक ही भूमि पर निरंतर एक जैसी फसल उगाने से उत्पन्न होने वाली समस्याओं को कम करना था। विभिन्न प्रकार की फसलों का क्रम बदलने से भूमि में पोषक तत्वों का संतुलन बना रहता था तथा अनेक कीट एवं रोगों का प्रभाव भी कम होता था।

मिश्रित खेती में एक ही खेत में विभिन्न प्रकार की फसलें उगाई जाती थीं। इससे प्राकृतिक संसाधनों का बेहतर उपयोग होता था तथा किसी एक फसल के प्रभावित होने पर अन्य फसलों से उत्पादन प्राप्त होता था। यह व्यवस्था कृषि को अधिक सुरक्षित एवं स्थिर बनाती थी।

आज जैविक खेती में भी फसल विविधता, फसल चक्र तथा मिश्रित खेती को अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय कृषि परम्परा के अनेक व्यावहारिक सिद्धांत आज भी प्रासंगिक हैं।

जल संरक्षण एवं प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन– भारतीय ज्ञान परम्परा में जल को जीवन का आधार माना गया है। वर्षा जल का संचयन, तालाबों, कुओं, बावड़ियों तथा नहरों का निर्माण भारतीय कृषि व्यवस्था का अभिन्न अंग था। प्राचीन भारत में विभिन्न क्षेत्रों की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार जल संरक्षण की स्थानीय प्रणालियाँ विकसित हुई थीं।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सिंचाई व्यवस्था, जलाशयों के निर्माण तथा उनके रखरखाव पर विशेष बल दिया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि कृषि उत्पादन के लिए जल प्रबंधन को अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता था।

जल का विवेकपूर्ण उपयोग भारतीय कृषि की प्रमुख विशेषता थी। आवश्यकता के अनुसार सिंचाई, वर्षा पर आधारित कृषि तथा स्थानीय जल स्रोतों के संरक्षण से कृषि एवं पर्यावरण दोनों का संतुलन बना रहता था।

वर्तमान समय में जल संकट विश्व की प्रमुख समस्याओं में से एक है। ऐसी स्थिति में भारतीय परम्परागत जल प्रबंधन की अनेक विधियाँ पुन: महत्वपूर्ण होती जा रही हैं।

प्राकृतिक कीट प्रबंधन एवं पौध संरक्षण– भारतीय कृषि परम्परा में पौधों एवं फसलों की सुरक्षा के लिए स्थानीय संसाधनों पर आधारित उपायों का उपयोग किया जाता था। वृक्षायुर्वेद में पौधों के रोगों की पहचान तथा उनके उपचार के लिए विभिन्न प्राकृतिक पदार्थों का उल्लेख मिलता है।

कृषि में स्वच्छता, समय पर बुवाई, स्वस्थ बीजों का चयन, खेतों की उचित देखभाल तथा संतुलित कृषि पद्धति को रोग एवं कीट नियंत्रण का आधार माना गया। इन उपायों का उद्देश्य केवल रोग का उपचार करना नहीं, बल्कि उसकी रोकथाम करना भी था।

यह ध्यान देने योग्य है कि आधुनिक जैविक खेती में प्रयुक्त सभी जैविक कीटनाशकों अथवा जैव–नियंत्रण तकनीकों का प्रत्यक्ष उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में नहीं मिलता। इसलिए ऐतिहासिक दृष्टि से यह कहना अधिक उचित होगा कि भारतीय ज्ञान परम्परा प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित पौध संरक्षण की व्यापक अवधारणा प्रस्तुत करती है, जिसका आधुनिक कृषि विज्ञान ने समय के साथ वैज्ञानिक विस्तार किया है।

जैव विविधता एवं पर्यावरण संरक्षण– भारतीय संस्कृति में प्रकृति के प्रत्येक घटक को जीवन का अभिन्न अंग माना गया है। वृक्ष, वन, नदियाँ, पर्वत तथा पशु–पक्षियों के संरक्षण की परम्परा भारतीय जीवन–दर्शन का महत्वपूर्ण अंग रही है। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव कृषि व्यवस्था पर भी दिखाई देता है।

विविध प्रकार की फसलों, वृक्षों तथा पशुधन का संरक्षण कृषि को प्राकृतिक संतुलन प्रदान करता था। इससे कीटों का प्रकोप सीमित रहता था, भूमि की उर्वरता बनी रहती थी तथा पर्यावरणीय संतुलन सुरक्षित रहता था।

वर्तमान समय में जैव विविधता का संरक्षण सतत कृषि का प्रमुख आधार माना जाता है। भारतीय ज्ञान परम्परा इस दिशा में ऐतिहासिक प्रेरणा प्रदान करती है कि कृषि का विकास प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ ही संभव है।

भारतीय ज्ञान परम्परा एवं आधुनिक जैविक खेती रू एक तुलनात्मक विश्लेषण– भारतीय ज्ञान परम्परा और आधुनिक जैविक खेती के मध्य अनेक वैचारिक समानताएँ दिखाई देती हैं। दोनों ही मृदा की उर्वरता, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, जैव विविधता, स्थानीय संसाधनों के उपयोग तथा पर्यावरणीय संतुलन पर बल देती हैं। दोनों का उद्देश्य केवल उत्पादन बढ़ाना नहीं, बल्कि कृषि को दीर्घकाल तक टिकाऊ बनाए रखना भी है।

इसके साथ ही दोनों के बीच कुछ महत्वपूर्ण भिन्नताएँ भी हैं। आधुनिक जैविक खेती प्रमाणन, गुणवत्ता मानकों, वैज्ञानिक परीक्षण, अंतरराष्ट्रीय व्यापार तथा विनियमित उत्पादन प्रणाली पर आधारित है, जबकि प्राचीन भारतीय कृषि व्यवस्था स्थानीय अनुभव, पारम्परिक ज्ञान तथा सामाजिक परम्पराओं पर आधारित थी।

इसलिए यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि आधुनिक जैविक खेती और भारतीय कृषि परम्परा पूर्णत: समान नहीं हैं, बल्कि भारतीय ज्ञान परम्परा में निहित अनेक सिद्धांत आधुनिक जैविक खेती के लिए ऐतिहासिक प्रेरणा एवं वैचारिक आधार प्रदान करते हैं। यही तथ्य इस शोध का केंद्रीय निष्कर्ष है।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में भारतीय ज्ञान परम्परा और जैविक खेती की प्रासंगिकता– इक्कीसवीं शताब्दी में कृषि क्षेत्र अनेक गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा है। जलवायु परिवर्तन, मृदा की उर्वरता में निरंतर कमी, भूजल का अत्यधिक दोहन, रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के बढ़ते उपयोग, जैव विविधता के ह्रास तथा खाद्य पदार्थों में रासायनिक अवशेषों की समस्या ने कृषि की वर्तमान प्रणाली पर पुनर्विचार की आवश्यकता उत्पन्न की है। ऐसी परिस्थितियों में विश्व स्तर पर ऐसी कृषि पद्धतियों की ओर ध्यान आकर्षित हुआ है जो उत्पादन के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण तथा प्राकृतिक संसाधनों के सतत उपयोग को भी सुनिश्चित कर सकें।

भारतीय ज्ञान परम्परा इसी दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। प्राचीन भारतीय कृषि व्यवस्था में भूमि, जल, वनस्पति, पशुधन तथा मानव को एक–दूसरे से जुड़ी हुई इकाइयों के रूप में देखा गया था। कृषि का उद्देश्य केवल अधिक उत्पादन प्राप्त करना नहीं, बल्कि प्राकृतिक संतुलन बनाए रखना भी था। यही विचार आज सतत कृषि तथा जैविक खेती की आधारभूत अवधारणा के रूप में स्वीकार किया जा रहा है।

भारतीय कृषि परम्परा की अनेक विधियाँ, जैसे स्थानीय संसाधनों का उपयोग, जैविक पदार्थों द्वारा भूमि की उर्वरता बनाए रखना, फसल विविधता, जल संरक्षण तथा पशुधन आधारित कृषि, आज भी ग्रामीण भारत के अनेक क्षेत्रों में प्रचलित हैं। यदि इन परम्पराओं का आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान के साथ समन्वय किया जाए, तो कृषि उत्पादन तथा पर्यावरण संरक्षण दोनों क्षेत्रों में सकारात्मक परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

भारत में जैविक खेती को प्रोत्साहन देने वाली पहलें– विगत वर्षों में भारत सरकार ने जैविक एवं प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए अनेक महत्वपूर्ण पहलें की हैं। इनका उद्देश्य रासायनिक कृषि पर निर्भरता कम करना, मृदा स्वास्थ्य में सुधार करना तथा किसानों की आय में वृद्धि करना है।

राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम के माध्यम से जैविक कृषि उत्पादों के मानकीकरण एवं प्रमाणन की व्यवस्था विकसित की गई है। परम्परागत कृषि विकास योजना के अंतर्गत किसानों को समूह आधारित जैविक खेती अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त उत्तर–पूर्वी भारत में जैविक खेती को विशेष बढ़ावा दिया गया है, जहाँ अनेक क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित कृषि परम्पराएँ आज भी विद्यमान हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद तथा विभिन्न कृषि विश्वविद्यालय जैविक खेती, मृदा स्वास्थ्य, जैव उर्वरकों तथा पर्यावरण–अनुकूल कृषि तकनीकों पर निरंतर अनुसंधान कर रहे हैं। साथ ही भारतीय प्राकृतिक कृषि पद्धतियों के वैज्ञानिक परीक्षण एवं मूल्यांकन पर भी कार्य किया जा रहा है।

इन पहलों से स्पष्ट होता है कि भारत में कृषि विकास की वर्तमान दिशा केवल उत्पादन वृद्धि तक सीमित नहीं है, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन एवं सतत विकास पर भी विशेष बल दिया जा रहा है।

सतत विकास के संदर्भ में भारतीय ज्ञान परम्परा की उपयोगिता– सतत विकास का मूल उद्देश्य वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना है। भारतीय ज्ञान परम्परा का मूल दर्शन भी इसी विचार से मेल खाता है।

भारतीय कृषि व्यवस्था में भूमि का संतुलित उपयोग, जल संरक्षण, वृक्षारोपण, पशुधन का संरक्षण तथा जैव विविधता को बनाए रखने पर विशेष बल दिया गया। इससे प्राकृतिक संसाधनों का दीर्घकाल तक संरक्षण

संभव हुआ।

आज संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रतिपादित सतत विकास लक्ष्यों में भूख की समाप्ति, सतत कृषि, स्वच्छ जल, जलवायु परिवर्तन का सामना तथा स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। भारतीय ज्ञान परम्परा के अनेक सिद्धांत इन उद्देश्यों के अनुरूप दिखाई देते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि भारतीय ज्ञान परम्परा आधुनिक सतत विकास की अवधारणा का प्रत्यक्ष स्रोत नहीं है, किंतु इसके अनेक सिद्धांत वर्तमान वैश्विक पर्यावरणीय चिंताओं के समाधान हेतु उपयोगी वैचारिक आधार प्रदान करते हैं।

भारतीय ज्ञान परम्परा और जैविक खेती की चुनौतियाँ – भारतीय ज्ञान परम्परा पर आधारित कृषि व्यवस्था के समक्ष वर्तमान समय में अनेक चुनौतियाँ भी हैं। सबसे बड़ी चुनौती पारम्परिक कृषि ज्ञान का क्रमशः लुप्त होना है। आधुनिक कृषि तकनीकों के विस्तार के कारण अनेक स्थानीय कृषि परम्पराएँ, बीज संरक्षण की विधियाँ तथा पारम्परिक कृषि ज्ञान धीरे-धीरे समाप्त होते जा रहे हैं।

दूसरी चुनौती जैविक खेती के संक्रमण काल से जुड़ी है। रासायनिक कृषि से जैविक खेती की ओर परिवर्तन के प्रारंभिक वर्षों में उत्पादन में अस्थायी कमी आ सकती है, जिससे किसानों को आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

तीसरी चुनौती प्रमाणन, विपणन तथा उपभोक्ता जागरूकता से संबंधित है। छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए जैविक उत्पादों का प्रमाणन तथा उचित मूल्य प्राप्त करना अनेक बार कठिन हो जाता है।

चौथी चुनौती यह है कि भारतीय ज्ञान परम्परा से संबंधित अनेक कृषि ग्रंथों का वैज्ञानिक पुनर्पाठ, प्रामाणिक अनुवाद तथा क्षेत्रीय स्तर पर परीक्षण अभी भी अपेक्षित है। अनेक पारम्परिक मान्यताओं का आधुनिक वैज्ञानिक विधियों द्वारा परीक्षण किया जाना आवश्यक है, ताकि उनके उपयोग की सीमा एवं प्रभावशीलता स्पष्ट रूप से निर्धारित की जा सके।

संभावनाएँ – भारतीय ज्ञान परम्परा और आधुनिक कृषि विज्ञान के समन्वय से भविष्य की कृषि व्यवस्था को अधिक टिकाऊ एवं पर्यावरण-अनुकूल बनाया जा सकता है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध पारम्परिक कृषि ज्ञान, स्थानीय बीजों की विविधता, औषधीय एवं उपयोगी पौधों की समृद्ध परम्परा तथा विविध कृषि-जलवायु परिस्थितियाँ इस दिशा में महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती हैं।

कृषि विश्वविद्यालयों, भारतीय ज्ञान प्रणाली अध्ययन केन्द्रों तथा अनुसंधान संस्थानों के सहयोग से प्राचीन कृषि ग्रंथों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है। इससे ऐसे सिद्धांतों की पहचान संभव होगी जिन्हें आधुनिक कृषि व्यवस्था में प्रभावी रूप से अपनाया जा सके।

किसानों के पारम्परिक अनुभवों का वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण, स्थानीय कृषि नवाचारों का संरक्षण तथा युवा पीढ़ी को भारतीय कृषि परम्परा से परिचित कराना भी अत्यंत आवश्यक है। इससे कृषि केवल उत्पादन का माध्यम न रहकर पर्यावरण संरक्षण एवं ग्रामीण विकास का प्रभावी साधन बन सकती है।

निष्कर्ष – भारतीय ज्ञान परम्परा में कृषि का विकास प्रकृति, समाज तथा मानव जीवन के मध्य संतुलन स्थापित करने की व्यापक दृष्टि पर आधारित था। वैदिक साहित्य, कृषि पाराशर, वृक्षायुर्वेद, कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय कृषि व्यवस्था में भूमि की उर्वरता, जल संरक्षण, पशुधन, जैव विविधता, फसल विविधता तथा प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग को अत्यंत महत्व दिया गया था।

आधुनिक अर्थों में जैविक खेती का विकास बीसवीं शताब्दी में हुआ और यह वैज्ञानिक अनुसंधान, प्रमाणन प्रणाली तथा समकालीन कृषि विज्ञान पर आधारित है। इसलिए इसे प्रत्यक्ष रूप से प्राचीन भारतीय कृषि व्यवस्था के समान नहीं माना जा सकता। तथापि यह भी उतना ही सत्य है कि भारतीय ज्ञान परम्परा में वर्णित अनेक कृषि सिद्धांतकृजैसे प्राकृतिक पोषण, मृदा संरक्षण, फसल चक्र, मिश्रित खेती, जल संरक्षण तथा पर्यावरणीय संतुलनकृआज की जैविक खेती के मूलभूत सिद्धांतों से उल्लेखनीय समानता रखते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा आधुनिक जैविक खेती के लिए ऐतिहासिक प्रेरणा, वैचारिक आधार तथा व्यावहारिक संकेत प्रदान करती है। यह परम्परा हमें सिखाती है कि कृषि का वास्तविक उद्देश्य केवल उत्पादन बढ़ाना नहीं, बल्कि प्रकृति के साथ संतुलित सह-अस्तित्व बनाए रखना भी है।

वर्तमान समय में जब विश्व जलवायु परिवर्तन, मृदा क्षरण, जल संकट तथा जैव विविधता के ह्रास जैसी समस्याओं से जूझ रहा है, तब भारतीय ज्ञान परम्परा का पुनर्पाठ अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि प्राचीन कृषि ज्ञान का न तो अंधानुकरण किया जाए और न ही उसे केवल ऐतिहासिक धरोहर मानकर उपेक्षित किया जाए। इसके स्थान पर वैज्ञानिक परीक्षण, ऐतिहासिक विश्लेषण तथा समकालीन अनुसंधान के आधार पर उसके उपयोगी सिद्धांतों को आधुनिक कृषि व्यवस्था में समुचित स्थान दिया जाना चाहिए।

अंततः कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा और आधुनिक जैविक खेती का समन्वय भारत को पर्यावरण-संतुलित, संसाधन-संरक्षण आधारित तथा सतत कृषि विकास की दिशा में महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है। यही इस शोध का प्रमुख निष्कर्ष है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

(क) प्राचीन मूल ग्रंथ

1. ऋग्वेद। गीता प्रेस, गोरखपुर।
2. अथर्ववेद। गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. यजुर्वेद। गीता प्रेस, गोरखपुर।
4. पाराशर।कृषि पाराशर। चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
5. सुरपाल।वृक्षायुर्वेद। चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
6. कौटिल्य।अर्थशास्त्र। हिन्दी अनुवाद। चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
7. वराहमिहिर।बृहत्संहिता। चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

(ख) हिन्दी ग्रंथ

8. पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र।भारतीय संस्कृति। लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।
9. पाण्डेय, राजबली।भारतीय संस्कृति। चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
10. उपाध्याय, बलदेव।संस्कृत साहित्य का इतिहास। शारदा निकेतन, वाराणसी।
11. शर्मा, रामविलास।भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
12. अग्रवाल, वासुदेव शरण।भारतीय संस्कृति के आधार। लोकभारती

प्रकाशन, प्रयागराज।
13. विद्यालंकार, सत्यकेतु।भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास। सरस्वती सदन, नई दिल्ली।
14. भारतीय इतिहास संकलन योजना।भारतीय ज्ञान परम्परा रू विविध आयाम।
15. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद।भारतीय ज्ञान परम्परा।

(ग) सरकारी एवं संस्थागत प्रकाशन

16. भारत सरकार।राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020।
17. कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय।परम्परागत कृषि विकास योजनासंबंधी प्रकाशन।
18. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद। जैविक खेती एवं सतत कृषि संबंधी प्रकाशन।
19. राष्ट्रीय जैविक कृषि केन्द्र। जैविक खेती संबंधी तकनीकी साहित्य।
20. खाद्य एवं कृषि संगठन। सतत कृषि एवं जैविक खेती संबंधी प्रकाशन।

(घ) शोध पत्रिकाएँ

21. इंडियन जर्नल ऑफ ट्रेडिशनल नॉलेज।
22. जर्नल ऑफ ऑर्गेनिक सिस्टम्स।
23. इंडियन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसेज।
24. करेंट साइंस।
25. भारतीय इतिहास समीक्षा।

****